

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 19-01-18

संविधान पर कायम रहे हमारा भरोसा

विभिन्न राजनीतिक दलों को चाहिए कि वे मामूली बहसों और अल्पकालिक लाभ के बजाय राष्ट्र निर्माण करने वालों की दूरदृष्टि पर यकीन करें।

श्याम सरन , (लेखक पूर्व विदेश सचिव हैं और फिलहाल सीपीआर के वरिष्ठ फेलो हैं।)



हाल ही में एक केंद्रीय मंत्री ने कहा कि उनकी पार्टी संविधान में बदलाव लाने को प्रतिबद्ध है। उनकी इस बात ने व्यापक चिंता पैदा की। यह बात आश्चर्य करने वाली है कि संविधान की सर्वोच्चता कायम रखते हुए इन टिप्पणियों को वापस ले लिया गया। चाहे जो भी हो लेकिन बीते कई सालों में देश का राजनीतिक और सामाजिक रुझान संविधान की मूलभूत भावना को धुंधला करने का रहा है, फिर चाहे सरकार कोई भी हो। भारतीय संविधान एक अहम दस्तावेज है। न केवल इसलिए क्योंकि यह भारतीय राज्य का ढांचा,

उसके संस्थान और उसकी शासन प्रक्रिया को तय करता है, बल्कि इसलिए भी क्योंकि यह देश के भविष्य की दृष्टि भी सामने रखता है। हमारे पुरखों ने संविधान के तत्वों में यही समाहित करने का प्रयास किया था। संविधान सभा के सदस्यों के बीच जो जबरदस्त बहस चली थी उसे आज भी पढ़ना रोचक है। उसमें हमें देश की विविधता और बहुलता देखने को मिलती है। इसके साथ ही हमें इस बात पर भी एक व्यापक सहमति नजर आती है कि हमें कैसा भारत चाहिए। निश्चित तौर पर इस बात पर सहमति थी कि राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से भारत के लिए अलग-अलग व्यवस्था की आवश्यकता थी ताकि समाज के उन धड़ों को आगे बढ़ाया जा सके जो सदियों से पीड़ित और वंचित थे। हमारे देश की विविधता के चलते ही गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक सुधारों की आवश्यकता थी जब तक कि शिक्षा आदि के जरिये जरूरी बदलाव आ सकें। बहरहाल, इस बात पर गहन सहमति थी कि विविधता को दबाने की नहीं बल्कि उसके समावेशन की मदद से एक जागरूक समाज स्थापित किया जाना चाहिए। ऐसा समाज जो व्यक्तिगत अधिकारों और दायित्वों पर आधारित हो।

भारतीय संविधान ऐसी नीति सामने रखता है जो नागरिकों पर केंद्रित है और जहां राज्य व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा की गारंटी देता है। समुदाय या समूह आधारित पात्रताओं की व्यवस्था है लेकिन अस्थायी तौर पर ताकि समय बीतने के साथ व्यक्तिगत अधिकारों को फलने-फूलने का अवसर मिले। इस मोड़ पर संविधान की इस मूल भावना को याद रखना श्रेयस्कर है क्योंकि समुदाय या समूह आधारित अराजक और संकीर्ण पात्रताओं का दौर देखने को मिल रहा है। अगर यह स्थायी विशेषता बन गया तो व्यक्तिगत अधिकारों की सर्वोच्चता का क्या होगा जोकि संविधान की प्रमुख खासियत बना हुआ है। समुदाय आधारित पात्रताओं के बल पर हम राष्ट्रीय एकता कायम नहीं कर सकते। बतौर एक लोकतांत्रिक देश हमारी समसामयिक चुनौतियों से निपटने में संविधान की मूल भावना इस कदर अहमियत क्यों रखती है? संविधान तैयार करने वालों ने एक ऐसे समाज की परिकल्पना की थी जहां हर नागरिक अपनी पूरी क्षमता विकसित कर सके और जाति,

धर्म आदि से परे श्रेष्ठता हासिल कर सके। यह एक ऐसा समाज होगा जहां अवसरों की समानता होगी, न कि पात्रताओं की और अवसर की यह समानता तभी तैयार हो सकती है जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा सबके लिए हों और भेदभाव नहीं हो। अगर देश इस लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है तभी हम लोगों की रचनात्मक ऊर्जा का फायदा उठा पाएंगे और व्यापक गरीबी, बीमारियों और सामाजिक आर्थिक असमानता को दूर कर पाएंगे। संविधान बहुत आधारभूत ढंग से यह मानता रहा है कि देश की जनता ही सबसे कीमती संसाधन है और एक लोकतंत्र के फलने-फूलने, उसके भविष्य के निर्धारण में मानव संसाधन की अहम भूमिका है।

यह समझ बताती है कि संविधान सभा के सदस्य किस कदर बौद्धिक क्षमताओं से लैस थे। संविधान सभा में अत्यंत बौद्धिक लोग थे जिन्होंने देश को आगे ले जाने की राह तय की। परंतु यह ऐसे लोगों का एक विशिष्ट समूह भी था जिन्होंने सभ्यता के मूल्य इसमें डाले। इन्हीं मूल्यों ने दुनिया में भारत को उसकी अलग पहचान दी है। संविधान सभा के रिकॉर्ड को पढ़ने पर पता चलता है कि उनकी बहस की गुणवत्ता कितनी उत्कृष्ट थी, उनकी दलीलें कितनी तीक्ष्ण थीं और असहमति को कितनी सहजता से लिया जाता था। परस्पर विरोधी मतों के लिए भी उनके मन में गहरा सम्मान था। इन बहसों की तासीर में एक किस्म का भरोसा है कि केवल इनकी मदद से ही ये दिग्गज ऐसा संविधान बना सकते थे जो हमारे देश के लिए जरूरी था। कई कठिन और जटिल मुद्दे भी हैं जिनका सामना हमारे देश को आज करना पड़ रहा है। उन मुद्दों से भी हमें वैसी ही शिक्षित और सूचित बहस के माध्यम से निपटना होगा। यह बहस सदन के भीतर भी हो सकती है और बाहर भी। बहरहाल, ऐसे तमाम मुद्दे हैं जिनका निर्धारण आज विभिन्न जनसमूहों की भावनाओं के आधार पर हो रहा है। इन समूहों के अपने पूर्वग्रह हैं। अगर इसका प्रतिरोध नहीं किया गया तो असहमति और दलीलों की गुंजाइश सीमित होती जाएगी। यह राज्य की जिम्मेदारी है कि वह व्यक्तिगत तौर पर लोगों की अभिव्यक्ति की आजादी की रक्षा करे। परंतु मौजूदा हालात इसकी गवाही नहीं देते। आज राज्य स्वघोषित समुदायों के दबाव का शिकार हो जाता है। यह अपनी जवाबदेही से दूर भागने का मामला है। फिल्मों पर प्रतिबंध या मामूली वजहों से किताबों पर रोक के रूप में हमें इसका उदाहरण देखने को मिलता है।

हम इतिहास को किसी की दृष्टि से नहीं पढ़ सकते। जबकि आज अधिकांश बहस और असहमति ऐसी ही बातों को लेकर उपजती है। हर किसी को अपना ऐतिहासिक संदर्भ रखने की छूट है लेकिन वह दूसरों को उसे मानने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। भले ही वह कितनी भी शिद्धत से उसे महसूस क्यों नहीं करता हो। न ही किसी भावना को कानून से ऊपर रखा जा सकता है। इन दिनों ऐसे विरोधाभासी संदर्भों की बाढ़ आई हुई है। हमें प्रायः उनका साक्षी बनना होता है। अगर हम इस खतरनाक रुझान को झेलते रहे तो सवाल यह है कि राष्ट्रीयता की भावना कैसे पनपेगी? अल्पावधि के चुनावी गुणा भाग राजनेताओं को ऐसी संकीर्णता भरी बातों के लिए प्रोत्साहित करते हैं। कई बार उनको इसका लाभ भी मिलता है। परंतु हमें इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। देश में नागरिक समानता हमारे संविधान के मूल सिद्धांतों में से एक है। सभी राजनीतिक दलों में इस बात पर सहमति बननी चाहिए और उन्हें संविधान में उल्लिखित समान नागरिकों वाले जागृत समाज के प्रति प्रतिबद्धता दोहरानी चाहिए। यह भी कहा जाना चाहिए कि वे जाति, समुदाय, भाषा और समुदाय आधारित संकीर्ण पहचान वाली राजनीति से दूर रहेंगे। एक आधुनिक, लोकतांत्रिक और अग्रसोची समाज केवल ऐसी सहमति के आधार पर ही निखरकर सामने आ सकता है जो देश के संविधान निर्माताओं के दूरदर्शी सोच पर आधारित हो।

खाप पर सख्ती

संपादकीय



अंतरजातीय विवाह करने वाले वयस्क युवक-युवतियों की राह में रोड़ा खड़ा करने वाली खाप पंचायतों के खिलाफ देश की शीर्ष अदालत ने कड़ा रुख अपनाया है। सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्र, ए. एम. खानविलकर और डी. वाई. चंद्रचूड़ की पीठ ने गैर-सरकारी संगठन शक्तिवाहिनी की याचिका पर सुनवाई करते हुए कहा कि किसी भी वयस्क युवक और युवती को अपनी पसंद के मुताबिक विवाह करने का अधिकार है, और उस पर समाज, पंचायतों और यहां तक कि उनके अभिभावकों को भी सवाल खड़े करने का अधिकार नहीं है। कोई खाप पंचायत या व्यक्ति जोड़ों को विवाह करने से रोकता है, तो गैर-कानूनी है। अदालत के सख्त रुख

के बाद उम्मीद की जानी चाहिए कि केंद्र सरकार विवाह की स्वतंत्रता संबंधी कानून बनाने की दिशा में पहल करेगी। दरअसल, भारतीय समाज के बहुतेरे हिस्सों में ऐसे विवाह करने वाले युवक-युवतियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। ऐसे विवाह को परिवार अपनी कथित इज्जत के साथ जोड़कर देखते हैं। झूठी इज्जत और कथित शान की हिफाजत के लिए अपनी ही बेटी-बेटियों की हत्या तक कर देते हैं। उत्तरी भारत के हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में खाप पंचायतें काफी शक्तिशाली हैं। विडम्बना यह है कि इन्हें लोगों का समर्थन प्राप्त है।

अलबत्ता, राजनीतिक दल और राज्य सरकारें भी खाप पंचायतों के तुगलकी फरमान के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करने से डरती हैं। जाहिर है कि खाप पंचायतों के प्रति सरकारों का रुख नरम और लचीला रहता है, तो पुलिस और प्रशासन भी मनमर्जी से विवाह करने वाले युवक-युवतियों को किसी तरह की कानूनी सुरक्षा देने में अपने को असहाय महसूस करते हैं। हालांकि न्याय मित्र राजू रामचंद्रन ने शीर्ष अदालत को बताया कि विधि आयोग ने अपनी 242वीं रिपोर्ट में विवाह की स्वतंत्रता संबंधी कानून बनाने का प्रस्ताव दिया है। लेकिन अदालत ने साफ कहा है कि सरकार अंतरजातीय विवाह करने वाले युवक-युवतियों सुरक्षा देने संबंधी कानून बनाए। इस संबंध में शीर्ष अदालत गाइडलाइंस जारी कर सकती है। मामले की सुनवाई अब पांच फरवरी को होगी। उम्मीद की जानी चाहिए कि शीर्ष अदालत के फैसले के बाद समाज से खाप पंचायतों की अर्ध-न्यायिक संस्थाओं की तरह कथित मान्यता देर-सबेर रद्द हो जाएगी।

खाप के खिलाफ

संपादकीय

खाप पंचायतों के मसले पर मंगलवार को सुप्रीम कोर्ट ने जरूरी दखल दिया है। संविधान हर बालिग नागरिक को अधिकार देता है कि वह अपनी पसंद और सहमति से किसी से प्रेम और विवाह कर सकता है, लेकिन बड़ी विडंबना है कि सामाजिक परंपरा के नाम पर कोई पंचायत उसे ऐसा करने से रोकती है। यह देश की संवैधानिक व्यवस्था के खिलाफ है। इसलिए सुप्रीम कोर्ट ने इस मसले पर ठीक ही कहा है कि अगर कोई बालिग लड़का और लड़की अपनी मर्जी से शादी करते हैं, तो यह उनका अधिकार है; इस पर कोई भी खाप पंचायत, सामाजिक समूह या व्यक्ति न तो सवाल उठा सकता है, न सजा तय कर सकता है। यानी देश की शीर्ष अदालत इस बारे में बिल्कुल स्पष्ट राय रखती है कि किसी नागरिक को उसके संवैधानिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। पर विचित्र है कि सरकारों को भी इन नियमों पर अमल सुनिश्चित कराना प्राथमिक जिम्मेदारी नहीं लगती। आखिर वे कौन-सी वजहें हैं कि प्रेमी जोड़ों और अंतरजातीय विवाह से जुड़े मामले में कोई खाप पंचायत गैरकानूनी तरीके से सामंती फरमान जारी करती है, कई बार उन पर हिंसक हमला भी होता है, लेकिन उनके खिलाफ कोई सख्त कार्रवाई नहीं की जाती?

ऐसे मामले अक्सर सामने आते रहे हैं, जिनमें किसी प्रेमी जोड़े को सिर्फ इसलिए मार डालने का फरमान सुनाया गया या मार डाला गया कि वे या तो सगोत्रीय संबंध में थे या फिर अलग-अलग जातियों की पहचान से आते थे। यह स्थिति न केवल एक सभ्य समाज के लिहाज से अमानवीय, बल्कि संविधान और कानून के खिलाफ खुली चुनौती है। शीर्ष अदालत जिस मामले की सुनवाई कर रही है, वह 2010 से चल रहा है। पर केंद्र सरकार अपनी मर्जी से शादी करने वालों को सुरक्षा देने से संबंधित कोई ठोस कानून लाना तो दूर, अब तक कोई सुझाव भी पेश नहीं कर पाई है। जबकि विधि आयोग पहले ही अंतरजातीय विवाह करने वालों की सुरक्षा के लिए कानून बनाने की सिफारिश कर चुका है। इस रवैये पर सुप्रीम कोर्ट ने साफ कहा है कि अगर खाप पंचायतों पर पाबंदी लगाने में केंद्र सरकार नाकाम है और इस मसले पर कानून आने में देरी होती है तो अब अदालत को इसमें दखल देना पड़ेगा। एक परिपक्व लोकतंत्र सामाजिक विकास के मकसद से तय संवैधानिक नियम-कायदों से चलता है।

अगर संविधान के तहत नागरिकों को कोई अधिकार हासिल है तो स्थानीय स्तर पर गठित कोई सामाजिक समूह या पंचायतें उसे बाधित नहीं कर सकतीं। यों भी, सामाजिक व्यवस्था को सुचारु तरीके से चलाने का दावा करने वाले किसी संगठन या संस्था की गतिविधियां एक प्रगतिशील और सभ्य समाज बनाने को लक्षित होनी चाहिए, न कि किसी जड़ परंपरा को बनाए रखने की खातिर अमानवीयता की हद तक जाने के लिए। विडंबना यह है कि समाज में जिस तरह के प्रेम संबंधों और विवाहों को जातिगत विद्वेष या इससे जुड़ी समस्याओं और जड़ता का सामना करने का सबसे कारगर उपाय माना जाता है, उनके खिलाफ खाप पंचायतें कई बार आपराधिक स्तर तक सक्रिय हो जाती हैं। मगर विकासमान समाज के लिए जरूरी शिक्षा, सेहत या रोजगार जैसे मुद्दों पर विचार करना उन्हें कभी जरूरी नहीं लगता। प्रेम और अंतरजातीय विवाह एक सभ्य और संवेदनशील समाज के निर्माण में सहायक साबित हो सकते हैं। इसलिए जरूरत है कि इसमें गैरकानूनी तरीके से दखल देने वाले समूहों पर लगाम लगाने की व्यवस्था हो।

Date: 18-01-18

Learning gaps

Study indicates that gender disparities and lack of skills to match aspirations could upset India's demographic dividend

Editorial

The Annual Status of Education Report (ASER), released on Tuesday, is significant for several reasons. In looking at the age group of 14-18, the survey — to begin with — offers insights into the performance of the Right to Education Act, eight years after it made elementary education a fundamental right. The 14-year olds surveyed in the report, brought out by the NGO Pratham, are amongst the first to have benefited from the Act's provisions of free and compulsory education for those in the age group of six to 14. There is heartening news here: Only 5.3 per cent of these teenagers are not in school. The ASER report shows that most continue to stay within the formal education system even when they are out of the Act's ambit. More than 92 per cent children, aged 15, were in school.

But that's where the good news end. In fact, with 30.2 per cent children aged 18 not receiving education, the situation gets alarming. As the report notes, "With almost 10 per cent of India's population in the age group of 14-18, these percentages translate into large numbers of youth who are not in the formal education system". The past 11 ASER reports, which focused on 6-14 year olds, indicated parity between girls and boys on school enrollment. Such parity is more or less maintained at age 14. However, by age 18, there are 4.3 per cent more girls than boys who are not enrolled in the formal education system. The gender divide gets even more glaring with the boys outperforming girls in almost every task assigned to them and being privileged in several respects, including access to computers.

The 14-18 age bracket is very close to the incoming earning age. Seen that way, ASER 2017 highlights the challenges that have to be overcome before India can reap the benefits of being the country with the largest young population in the world. It is alarming, for example, that about 25 per cent of the youth in the age group of 14-18 cannot read a basic text fluently in their own language. Learning deficits such as this highlight the need for pedagogic tools that synchronise knowledge with lived realities. ASER 2017 shows that though the need to increase enrollment remains pressing, the imperatives of reforming curricula and pedagogy can no longer yield second place to it. The report should go some way in addressing the complaint of policymakers that lack of data on learning outcomes prevents tweaking policies, meaningfully. The important takeaway of the report is that education should not only provide young people the skills but also the confidence to deal with the world. India's education system has some way to go before it fulfills that objective.

Date: 18-01-18

Khaps defanged

SC makes it illegal for extra-constitutional organisations, society and parents from forcing marital choices

Editorial

A bench headed by the Chief Justice of India, Dipak Misra observed on Tuesday that khaps have no right to question the marital choices of community members. While the matter in dispute, filed by the NGO Shakti Vahini, concerned honour crimes and the role of khaps, the Supreme Court has said that the same principle must apply to all of society, including parents. In a country where parental choice and social pressures determine the choice of spouse to an unhealthy extent, the Court has laid down a line which legislators should have demarcated decades ago. Khaps have been the most egregious offenders in this regard, sanctioning ostracism, humiliation and the use of lethal force against young people who exercise personal choice and marry in contravention of the complex web of exogamous and endogamous conventions which govern marriage, and which prevail in the social domain, outside the legal system.

In response to outrage about honour killings in India and Pakistan, some khaps have tried to embrace modern values. In 2014, the Satrol khap panchayat, Haryana's biggest, permitted inter-caste marriages. Realism may have played a more compelling role than idealism in this decision to open up — it addressed a shortage of eligible brides, the consequence of a poor sex ratio. But significantly, few inter-caste marriages followed. Besides, a few progressive steps cannot mitigate the revulsion of the rest of the country when khaps encourage the honour killing of transgressing youths by their own families.

The Supreme Court is to be applauded for expanding the ambit of its observations beyond khaps, whose members constitute a tiny fraction of the Indian population, to prevent parents and society at large from interfering with marital choice. Families are history-sheeters in this regard, and traditional social expectations are routinely invoked to force unwanted choices upon young people. With this case, these forces are effectively declared illegal. Administrators and the police, which hesitate to intervene in what are seen as community matters until an actual crime is committed — by which time it is usually too late — should now be able to move much more effectively. Because a crime has been committed the moment a parent or group moves against a young person's choice, no excuse remains to delay police action.



Date: 18-01-18

Three cheers for civil society

Is the Gujarat model of civil society mobilisation replicable in other parts of India?

Neera Chandoke is a former professor of Political Science, Delhi University

As thousands of agitating and agitated Europeans crowded the streets in eastern European cities in 1989, Stalinist states collapsed like the proverbial house of cards. A self-limiting social movement, which had carved out a free zone called civil society outside the sphere of the state and the household, was transformed into a political movement. Not surprisingly, the term civil society as a companion concept of democracy came readily onto the lips of policymakers, politicians, journalists, activists, and scholars. Democratic theory holds that citizens have the political competence to participate in political processes through public debates, campaigns, and non-violent direct action in civil society. To challenge this is to deny the basic right of citizens to share in the making of a public discourse and an accessible political discourse. The rider is that a democratic state is a necessary precondition for a vigilant civil society.

The rise of Jignesh Mevani

However, in recent years, the space of civil society in India has shrunk dramatically because the present government has neither patience for civil society activism nor respect for the political competence of citizens. Under the indomitable and relentless attack of the government, civil society might just wither. But a kindly fate intervened. At a time when the future of India's democracy appeared bleak, three young men heading social movements in Gujarat catapulted core issues of well-being, rights and solidarity onto the political platform. Their combined agenda might rejuvenate civil society as the sphere of non-violent protest. Jignesh Mevani, Hardik Patel, and Alpesh Thakor might just aid in replenishing the energies of the sphere.

Of the three, Mr. Mevani stands out as forceful and motivated. He appeared onto the political scene in the wake of the stomach-turning lynchings in Una in July 2016. Armed with the slogan, "You keep the cow's tail, just give us our land", he radically shifted the Dalit discourse from an overwhelming preoccupation with identity politics to the political economy of land and occupation. By skilfully welding caste and class vide the twin slogans of Jai Bhim and Lal Salaam, he challenged the 'Gujarat model of development'. He also questioned the wider notion of development that concentrates on economic growth and leaves workers and peasants on the wayside.

His ideology is cogent and hard-hitting. Targeting the Bharatiya Janata Party (BJP) government as well as neo-liberalism, he reaches out to a national audience of the most vulnerable, impoverished, and marginalised. He has taken into his ideological fold not only doubly disadvantaged Dalits, but also poor Brahmins, the beleaguered Muslim community, and tribals. Above all, Mr. Mevani has foregrounded agrarian distress compellingly and emphatically to illustrate the shortcomings of the Modi model of development. Caste discrimination, he argues, can be tackled only when Dalits have access to land and jobs, and when they attain self-respect as producers of value. As long as they are dependent on handouts, they will continue to be stripped of self-respect. Prime Minister Narendra Modi appeals to a Gujarati constituency on the basis of *asmita* (pride). Mr. Mevani asks whether *asmita* can be realised if the Dalits in Gujarat are bereft of land and income. More significantly, the Azadi Kooch, organised by the Rashtriya Dalit Adhikar Manch, has disseminated the legacy of the Una movement across India. The movement is not only about the four victims of the lynching by cadres of the Hindutva brigade, it is about demanding and securing basic rights that accrue to every citizen. Mr. Mevani defends a form of politics that dares the legitimacy of a social, political and an economic order based on exploitation and oppression, and suggests that the only way this can be fought is by a trans-caste and trans-religious alliance of the oppressed. The phase of identity politics which capitalised caste identities to seek benefits from the state is sought to be replaced by the politics of egalitarian democracy.

Forging a coalition

The three leaders can be credited with the forging of a politically significant coalition of castes that have historically been at loggerheads: the Dalits, the Patidars, and the Thakors. Hardik Patel's Patidar Anamat Andolan Samiti was initiated soon after Mr. Modi left Gujarat for New Delhi. The Patidars demanded inclusion of their community in the list of Other Backward Classes (OBC) to avail the benefits of reservations, and Mr. Patel was soon propelled into the competitive arena of caste politics as the most visible face of the agitation. State repression and arrests followed, but Mr. Patel nevertheless managed to galvanise substantial opposition against the BJP. By the time the 2017 Assembly elections came around, the reservation issue was accompanied by a wider political economy focus on the exorbitant costs of education, lack of jobs, non-existent health facilities, and poor remuneration given to Gujarati farmers. Not every demand for reservations can be considered legitimate, but the demand itself is understandable. The agrarian economy is in dire straits, agriculture promises few rewards, and urban-based professions promise even less for young people. The demand for reservations simply epitomises the lack of opportunities — the same ones that Mr. Modi had promised when campaigning for the 2014 elections.

Alpesh Thakor, who heads the OBC, SC, ST Manch, that opposes the demand for reservations by the Patels, has also elaborated the dismal economic scene in Gujarat. He accuses the BJP government of ignoring the interests of the poor and middle classes. He points to the ready availability of liquor that has wreaked havoc on families in a prohibition State. He focusses on losses in agriculture, unemployment, the demolition of the public educational system, and corruption. And he gestures to the general malaise that clouds the lives of thousands of Gujaratis.

Together these three leaders have mobilised social movements around substantive issues of livelihood by concentrating on the hardships that rack the lives of citizens, on declining public support for education, the dismal state of health facilities, unemployment, and agrarian hardship. More significantly, they have mounted a challenge to the legitimacy of the Gujarat model of development. Fearlessly confronting a leadership that had been considered for over a decade to be above criticism, they have charted out a course of coalition politics that combines caste and class. The message is clear: the narcissism of small identities appears inconsequential in front of basic needs for all. This is precisely the task that civil society, which appears to have retreated from confrontation with the state, has to take up with gusto. Civil society organisations have to come together and reinvent themselves as the guardian of substantive freedom in India. Social movements in Gujarat have shown us the route across stormy seas. We have to harness the tide, before it ebbs and leaves citizens stranded on the shores of an uncaring India.
